॥ ओ३म् ॥

वर्ण जन्म से नहीं अपितु गुण कर्म से

प्रणेता :

वेदवागीश, व्याख्यान वाचस्पति

पूज्यपाद श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक

प्रकाशक :

वैदिक संस्थान, नजीबाबाद

जनपद बिजनौर, उत्तर प्रदेश

श्रावणी २०५४ विक्रमाब्द

१,९६,०८,५३,०९७ मानवाब्द, १७३ दयानन्दाब्द

द्वितीयावृत्ति ४४००

मूल्य : चार रुपये

॥ ओ३म् ॥

वर्ण जन्म से नहीं

अपितु

गुण कर्म से

प्रणेता :

वेदवागीश, व्याख्यान वाचस्पति

पूज्यपाद श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक

प्रकाशक :

वैदिक संस्थान, नजीबाबाद

जनपद बिजनौर, उत्तर प्रदेश

श्रावणी २०५४ विक्रमाब्द

१,९६,०८,५३,०९७ मानवाब्द, १७३ दयानन्दाब्द

द्वितीयावृत्ति ४४००

मूल्य : चार रुपये

॥ ओ३म् ॥

परिचय-श्री लाला राधेलाल जी

श्री लाला राधेलाल जी का जन्म १९०७ ईसवी में श्री लाला रामचन्द्र जी अग्रवाल नगीना बिजनौर जनपद (उ० प्र०) निवासी के यहाँ हुआ था। उसके पश्चात् आप अपने मामा जी के यहाँ अफजलगढ़ जनपद बिजनौर में पालित-पोषित हुए। लालाजी की शिक्षा धामपुर नगर के के० एम० इण्टर कालिज में हुयी तथा बाद में कृषि कार्य प्रारम्भ किया और उसके पश्चात् धामपुर मण्डी में ही आढ़ती के रूप में व्यापार का व्यवसाय प्रारम्भ कर दिया। आप का विवाह जनपद ऊधमसिंहनगर के जसपुर नगर निवासी एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था।

सम्प्रति आपके परिवार में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती माता फूलकुमारी जी और आपके सात पुत्र हैं आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री महीपाल शरण जी मुख्य अभियन्ता सिचाई विभाग भी रहे अब सेवा निवृत्त होकर उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद नगर में बस गये हैं।

श्री महीपाल शरण जी से छोटे पुत्र श्री विजयकुमार जी धामपुर नगर में रहते हैं और केन क्रेशर का उद्योग चलाते हैं। स्वर्गीय लाला जी के अन्य पुत्र भी अपने-अपने स्वतन्त्र कार्यों में लगे हैं। लालाजी के द्वितीय पुत्र श्री विजय कुमार जी केन क्रेशर के अतिरिक्त कृषि कार्य भी चला रहे हैं।

श्रीयुत लाला राधेलाल जी विचारों से सिद्धान्तवादी आर्य समाजी थे। एक समय वह था, जबकि अबसे लगभग पचास वर्ष पहले लाला जी ने एक विधवा-विवाह कराया था तो पूरी अग्रवाल बिरादरी उनसे रुष्ट हो गयी थी किन्तु लाला जी लेश भी नहीं

डगमगाये।

सन् १९५७--५८ में स्वर्गीय लाला जी ने धामपुर में केन क्रेशर स्थापित किया था। राजनीति में भी लालाजी ने भाग लिया। राजनीति में उनकी रुचि तब हुयी थी, जब राजनीति में भाग लेने का अर्थ मात्र राजनीति करना नहीं अपितु भारत को स्वतन्त्र कराना था। आप ने स्वाधीनता संग्राम में जेल यात्रा भी की थी और कांग्रेस के उस समय के अग्रणी कार्यकर्त्ताओं में रहे।

२७ नवम्बर सन् १९८४ को आप ने परलोकगमन किया। आपके पुत्रों में से श्री बिजयकुमार जी वैदिक संस्थान नजीबाबाद के आजीवन सदस्य हैं और अब आप ने अपने परलोकवासी पिता श्री लाला राधेलाल जी की स्मृति में इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ ग्यारह सौ ११००) रुपये को राशि प्रदान की है।

श्री विजयकुमार जो के सुस्वास्थ्य और दीर्घायुष्य तथा पारिवारिक सुख-शान्ति के लिये परमपिता परमात्मा से प्रार्थी हूँ।

शुभकाम :
वेदमुनि परिव्राजक
अध्यक्ष : वैदिक संस्थान नजीबाबाद

वैदिक संस्थान की आर्थिक सहायता

करके वैदिक धर्म और राष्ट्र-धर्म के

प्रचार-प्रसार तथा साधनहीन

होनहार विद्यार्थियों की

शिक्षा में योगदान

कर पुण्य के

भागी बनें।

मन्त्री

वैदिक संस्थान नजीबाबाद

जनपद-बिजनौर (उ० प्र०)

जो कोई जन्म से वर्ण-व्यवस्था माने और गुण-कर्म से न माने तो उससे पूछना चाहिये कि कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच अन्त्यज अथवा कृश्चिन, मुसलमान हो गया हो, उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते ? तब यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म को छोड़ दिया। इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है, इससे यह सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हों वे ही ब्राह्मणादि और नीच भी उत्तम वर्ण के गुण, कर्म, स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और उत्तम वर्णस्थ हो के नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में अवश्य गिनना चाहिय।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

॥ ओ३म् ॥

वर्ण व्यवस्था और गीता

प्रिय पाठकगण !

विचारणीय प्रश्न यह है कि यह वर्ण-व्यवस्था है अथवा जन्म-व्यवस्था ? जन्म से तो जन्म व्यवस्था हो सकती है, वर्ण-व्यवस्था नहीं। वर्ण शब्द का अर्थ है—वरण किया हुआ, चुना हुआ—यह जन्म से कैसे लागू होगी ? जन्म के समय नवजात शिशु में वरण करने, चुनने की योग्यता ही कहाँ होती है ? विद्याध्ययन काल में जिस प्रकार की योग्यता प्राप्त कर ली जाती है, उसी प्रकार का वर्ण हो जाता है। इस नियम में गीता का मत है—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।" गीता अ० ४।१३।

अर्थात् मेरे द्वारा चारों वर्णों का निर्माण गुण-कर्म के विभाग के रूप में हुआ है। मनुष्य में जो योग्यतायें होती हैं, जिस प्रकार के गुण होते हैं, वह वैसे ही कर्म करता है। गीता ने गुण के अनुसार कर्म का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण देकर वर्ण-व्यवस्था को गुण अर्थात् योग्यतानुसार कर्म करने के लिये विभाजन कर प्रस्तुत

कर दिया है। गीता के १८वें अध्याय में तो इस "गुण कर्म विभागश:" का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पाठकों की जानकारी के लिये उसे यहाँ दिया जा रहा है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ १८ ४॥

अर्थात् हे परंतप अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो के स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए "कर्माणि प्रविभक्तानि' कर्म विभाग किये हैं। कैसे किये गये हैं ? यह भी गीता के शब्दों में पाठकगण पढ़ें।

शमो दमस्तप: शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ १८।४२॥

मनोविचारों का शमन, इन्द्रियों का दमन, वेदादि शास्त्रों के अध्ययन में पुरुषार्थ, पवित्रता, निन्दा-स्तुति, सुख-दुख, हानि-लाभ, मानापमान आदि की चिन्ता से रहित, सरल-स्वभाव रहना, वेदादि शास्त्रों और पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके उससे तदनुसार लाभ लेना, परमेश्वर के अस्तित्व पर जैसा वह है, उसे वैसा ही समझ कर विश्वास करना --यह ब्राह्मण के स्वभाव से उत्पन्न हुए कर्म हैं। "स्वभावजम्" के साथ "गुण-कर्मविभागश:" ही लागू हो रहा है।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ १८।४२ ॥

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध में मैदान छोड़कर न भागना, दान करना तथा ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखना यह सब क्षत्रिय के स्वभाव से उत्पन्न हुए कर्म

वहाँ भी "स्वभावजम्" शब्द दर्शनीय है, जिस का अर्थ स्वभाव से उत्पन्न हुए है— जन्म से कदापि नहीं।

क्रृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ १८।४४ ॥

कृषि, गौरक्षा और व्यापार वैश्य के स्वभाव से उत्पन्न हुए कर्म हैं तथा सेवा करना कर्म शूद्र का भी स्वभाव से ही उत्पन्न है। "स्वभावजम्" शब्द सभी श्लोकों में और सभी वर्णों के लिये प्रयुक्त होकर जन्मानुसार नहीं अपितु रुचि–अनुसार कर्मों का विवेचन कर रहा है। यह संक्षेप में गीता का मत है। शूद्र के विषय में इतना कह देना अनुचित न होगा कि जिसमें वह गुण न आ सके, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के लिये बताये गये हैं अर्थात् जो किसी कार्य विशेष की योग्यता नहीं प्राप्त कर पाता, वह अन्य वर्णों के यहाँ सेवा–कार्य व श्रम आदि करके जीविका प्राप्त कर जीवन-यापन करता है। अभिप्राय यह है कि विद्या–शिक्षा आदि के कार्यों से रहित, रक्षा–कार्यों में असमर्थ, उत्पादन द्वारा सम्पत्ति की वृद्धि करने में अयोग्य व्यक्ति शूद्र कहलाता है।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ १०।६५ ॥

शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है और ब्राह्मण शूद्रता को। वैसे ही विद्या आदि की प्राप्ति के द्वारा क्षत्रिय व वैश्य भी ब्राह्मणत्व को और सद्गुणों तथा उच्च वर्णों के कर्त्तव्य–कर्मों को छोड़कर शूद्रत्व को प्राप्त होते हैं।

वर्ण-व्यवस्था और मनुस्मृति

सृष्टि के प्रारम्भ की ग्यारहवीं पीढ़ी में ही महर्षि मनु द्वारा मानव-धर्म का विधान और उपदेश किया गया। वही उपदेश मानव-धर्म-शास्त्र और बाद को मनुस्मृति कहलाया। ग्रन्थाकार रूप में आज भी उपलब्ध है। यद्यपि इसमें समय समय पर स्वार्थी और भ्रष्ट व्यक्तियों द्वारा अनर्गल तथा भ्रष्ट बातें भी भरी गयी हैं, जो ध्यानपूर्वक पढ़ने और विचार करने से समझी जा सकती हैं और मनु का दृष्टिकोण ठीक प्रकार से समझ में आ जाता है, जो अत्यन्त व्यावहारिक, युक्तियुक्त,तर्क सम्मत और स्वीकार करने योग्य है।

इस ग्रन्थ में मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू पर—चाहे वह वैयक्तिक हों अथवा पारिवारिक और या चाहे सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक व प्रशासनिक कोई भी पहलू हो— पर्याप्त विवेचना की गयी है। यह विवेचना ही उनके द्वारा निर्मित विधान है। इस विधान को उन्होंने जहाँ सामाजिक ढाँचे में ढालने की व्यवस्था दी है, उसी स्थल को लक्ष्य करके यह पंक्तियाँ लिखी गयी हैं।

यह सामाजिक ढाँचा वर्ण-व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। वास्तव में तो यह आर्थिक ढाँचा है, क्योंकि अर्थ सम्पादन के प्रकारों के आधार पर ही इसका विवेचन किया गया है। जिसका जो जीविकोपार्जन का साधन— उसी के अनुसार उसका वर्ण। कहना यह चाहिये कि वर्ण-व्यवस्था एक प्रकार से श्रम-व्यवस्था

का ही दूसरा नाम है। वर्ण-व्यवस्था क्योंकि थोपी हुयी अथवा जन्म-सिद्ध नहीं अपितु रुचि व इच्छानुसार वर्णी अर्थात् वरण की हुयी, चुनी हुयी होती है अतः नाम वर्ण-व्यवस्था रक्खा गया है।

अर्थ सम्पादन के प्रकार मनुष्य वही अपनाता है. जिसकी रुचि और जिसे कर सकने की योग्यता उसमें होती है। रुचि और योग्यता के विपरीत यदि व्यक्ति को कार्य मिलता है या करना पड़ता है तो वह उसमें वास्तविक रूप में सफल नहीं होता। इस प्रकार व्यक्ति की यह असफलता समाज की असफलता बन जाती है। समाज की असफलता से राष्ट्र की आर्थिक प्रगति व समृद्धि को धक्का लगता है। राष्ट्र धन के अभाव से ग्रसित हो जाता और धनाभाव से प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ जाता है।

मनु ने अपनी ऋषि दृष्टि से इसे भली-भाँति समझ लिया था और उपयोगितानुसार उसकी व्यवस्था बना दी थी। कालान्तर में एक ऐसा समय आया कि वह व्यवस्था गड़बड़ा गयी और वर्त्तमान काल में तो इसका नाम ही शेष रह गया है। मनु की वर्ण-व्यवस्था तो कहीं भी दिखायी नहीं देती। हाँ जन्म-व्यवस्था अवश्य दनदना रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार तो महाभारत से एक सहस्र वर्ष पूर्व ही स्थिति बिगड़ चली थी, किन्तु महाभारत युद्ध के उपरान्त से अब तक इन पाँच सहस्र वर्षों में तो सम्पूर्ण ढाँचा ही भ्रष्ट हो गया है—नितान्त भ्रष्ट।

गुण-कर्मों का स्थान जन्म ने ले लिया है। जन्म-जात्यभिमान पराकाष्ठा पर है। कहना यह चाहिये कि वर्ण-व्यवस्था अब जन्म-व्यवस्था बनकर रह गयी है। कुछ वर्गों ने इस विकृत अवस्था का अनुचित लाभ उठाने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी और कुछ

वर्गों की प्रगति के द्वार सहस्राब्दियों से इस प्रकार बन्द रहे हैं, जैसे वह मानव ही नहीं है। परिणाम इसका यह है कि जन्म-जात्यभिमानियों द्वारा सताये हुए वर्गों को अब कुछ बोलने का अवसर मिला है, तो वह उसी प्रकार फुफकार उठे हैं, जैसे फन छूटने पर साँप फुफकार उठता है। लगभग बीस वर्ष पहले उत्तर प्रदेश विधानसभा में मनुस्मृति के पृष्ठ तक फाड़े गये। उसके बाद मनुस्मृति और तुलसीकृत रामचरित मानस को जलाया भी गया। किन्तु मनुस्मृति को ध्यानपूर्वक पढ़ना अलग बात है और किसी सुनी सुनायी बात पर अथवा अधूरी जानकारी से भड़क उठना अलग बात। आगे हम मनु के विचारों को प्रस्तुत करते हैं। अपनी ओर से आवश्यक टिप्पणी ही करेंगे और यह चाहेंगे कि जन्म-जात्यभिमानी उच्च वर्गों के लोग और पिछड़े वर्गों के शूद्र कहाये जाने वाले सभी ठण्डे मन और मस्तिष्क मे विचार कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें। मनु का विधान इस प्रकार है—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादत: ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्य शूद्रं च निरवर्तयत् ॥
अध्याय १।३१।

लोकों अर्थात् मनुष्यों को उन्नति के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इस प्रकार उत्पन्न किये गये है, जैसे मानव के शरीर में मुख, बाहू, उरु, और पाद बनाये हैं। इसका स्पष्टार्थ यह हुआ कि जैसे शरीर की गतिविधियों के भली प्रकार सञ्चालन के लिये मुँह, हाथ, जङ्घा, पाँव होने आवश्यक हैं। इसी प्रकार मानव समाज का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिये चार प्रकार के मानव परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं। ब्राह्मण अर्थात्

विद्या–शिक्षा-अनुसंधान कार्य करने तथा न्याय व्यवस्था देने वाले क्षत्रिय अर्थात् प्रबन्ध-व्यवस्था तथा रक्षा करने वाले, वैश्य अर्थात् उत्पादन, व्यापार आदि के द्वारा सम्पत्ति अर्जित कर समाज की अर्थ-व्यवस्था को सुदढ़ करने वाले तथा उपर्युक्त सब प्रकार की योग्यताओं से रहित शूद्र अर्थात् जो सेवा तथा शारीरिक श्रमों के द्वारा समाज की आवश्यकताओं को पूर्ति करें और इस प्रकार अपने लिये जीविका भी प्राप्त कर लें। महर्षि मनु इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

अध्ययनं अध्यापनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

अध्याय १।८८।

अध्ययन करें और अध्यापन करे, यज्ञ करें और यज्ञ करायें। दान करें और दान लें— यह छ: कर्म ब्राह्मण के हैं।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासत: ॥

अध्याय १।८९।

प्रजा की रक्षा, दान करना, यज्ञ करना, अध्ययन और विषय वासनाओं में न फंसना ··· ············ येपाँच क्षत्रियों के कर्म हैं।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥

अध्याय १।९०।

पशुओं का पोषण दान करना, यज्ञ करना, अध्ययन, व्यापार, लेन-देन और कृषि यह सात वैश्यों के कर्म हैं।

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥
अध्याय १।९१।

प्रभु ने शूद्र का एक ही कर्म बताया है—इन वर्णों की निन्दा रहित सेवा करना अर्थात् जिस व्यक्ति में उपर्युक्त तीनों वर्णों में से किसी की भी योग्यता न हो, वह इन वर्णों की सेवा द्वारा अपनी जीविका सम्पादन कर ले। परन्तु किसी के लिये निन्दित कर्म कर के जीविका सम्पादन न करे। केवल किसी वर्ग विशेष में जन्म लेने के कारण ही कोई सम्मान अथवा घृणा का पात्र नहीं होता, यह अगले श्लोक में पढ़िये—

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥
अध्याय २।१५५।

ब्राह्मणों का बड़प्पन ज्ञान से होता है और क्षत्रियों का पराक्रम से। वैश्यों का धन-धान्य की समृद्धि से और शूद्रों का जन्म से। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि आवश्यक गुणों को प्राप्त हुए बिना कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण के बड़प्पन को प्राप्त नहीं होता। केवल जन्म के कारण यदि कोई बड़प्पन मानता है तो वह तो शूद्रत्व को हो प्राप्त हो सकता है, द्विज वर्णों को नहीं। ठीक उसी प्रकार—

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥

जैसे लकड़ी का बना हुआ हाथी—नाम का ही हाथी है।

हाथी से लिया जाने वाला कोई काम उससे नहीं लिया जा सकता जैसे चमड़े का मृग अर्थात् मरे हुए मग के चर्म को लेकर और उसमें भूसा आदि भरकर बनाया हुआ मृग—नाम मात्र को ही मृग होता है, किन्तु उसमें मृग की आकृति रंग और चर्म को छोड़कर मृग की अन्य कोई बात तो क्या ? जीवन तक भी नहीं होता, ठीक उसी प्रकार बिना पढ़ा ब्राह्मण का पुत्र भी नाम मात्र का ही ब्राह्मण है, किन्तु वास्तव में तो उसका ब्राह्मणत्व से दूर का भी सम्बन्ध नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणत्व विद्या और ज्ञान में निहित है—जन्म में नहीं

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥
अध्याय २।१६८।

जो व्यक्ति द्विज अर्थात् ब्राह्मण होकर भी वेद को छोड़कर अन्यत्र श्रम करता है अर्थात् वेद-विद्या के पढ़ने और पढ़ाने में श्रम न करके अपना समय अन्य कार्यों में लगाता है, वह जीवित रहते ही शीघ्र वंश सहित शूद्रत्व को प्राप्त होता है। जब अपने विद्या और ज्ञान के कार्यों को छोड़ देगा, तब स्वयं तो अविद्या में फँसकर शूद्रत्व को प्राप्त हो ही जायगा—आगे चलने वाली वंश-परम्परा के लोग भी विद्या-क्षेत्र से दूर हो जाने के कारण शूद्रत्व को प्राप्त होते रहेंगे। इससे आगे तो महर्षि मनु ने वर्ण-परिवर्तन के विषय में यहाँ तक कहा है कि—

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहङ्कृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयोनित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥
अध्याय ९।३३५।

स्वच्छ रहने वाला, उत्तम परिश्रमी, मधुर भाषी, अहङ्कार रहित तथा नित्य ब्राह्मणादि के आश्रय में रहने वाला [शूद्र] उच्च जाति को प्राप्त हो जाता है ।

इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणादि सवर्ण जन के सम्पर्क में रहने से उन वर्णों के गुण-कर्मों को धारण कर लेने पर शूद्र भी ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों में से किसी एक वर्ण का अपने प्राप्त गुण-कर्मों के अनुसार बन जाता है । आगे मनुजी कहते हैं—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैत शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ १०।६५॥

शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है और ब्राह्मण शूद्रता को । वैसे ही विद्या आदि प्राप्ति के द्वारा क्षत्रिय व वैश्य भी ब्राह्मणत्व को और सद्गुणों तथा उच्च वर्णों के कर्त्तव्य-कर्मों को छोड़कर शूद्रत्व को प्राप्त होते हैं ।

मनुस्मृति के इतने उद्धरणों को देने के पश्चात् अब किसी अन्य टिप्पणी की आवश्यकता नहीं । यह उद्धरण इस बात की प्रबल साक्षी हैं कि महर्षि मनु पर किसी को भी किसी वंश विशेष में जन्म धारण कर लेने से सम्मान का पात्र बताने का लाञ्छन मिथ्या है । वर्तमान समय की जन्म-जाति प्रथा मनु की मान्यता के विरुद्ध है तथा वास्तव में यह वर्ण-व्यवस्था नहीं है । वर्ण-व्यवस्था तो वरण किये जाने की ही व्यवस्था है । जन्म से गले पड़ने वाली तो जन्म-व्यवस्था ही कही जा सकती है, वर्ण-व्यवस्था नहीं ।

—: ० :—

वर्ण-व्यवस्था और वेद

यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय में वर्ण-व्यवस्था की रूपरेखा का वर्णन है यजुर्वेद 'कर्म काण्ड" का वेद है। आजकल "कर्म-काण्ड" का अर्थ केवल यज्ञ मात्र आदि ही अधिक प्रचलित है किन्तु इसका वास्तविक अर्थ है 'कर्म-विभाग"। यजु का एक अर्थ कर्म भी है, इस प्रकार यजुर्वेद कर्म का वेद है। यह भी कहा जा सकता है कि वेद के कर्म-व्यवस्था विभाग का नाम ही यजुर्वेद है। वर्ण व्यवस्था क्योंकि श्रम व्यवस्था का ही दूसरा नाम है और श्रम-व्यवस्था की दृष्टि से कर्मानुसार समाज का वर्गीकरण ही कर्म-व्यवस्था है अतः कर्मकाण्ड (कर्म विभाजन) होने के कारण इसे यजुर्वेद में आना चाहिये था। एतदर्थमेव जैसा कि हमने लिखा है, यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय में इसकी रूपरेखा दी गयी है और समझने में भ्रान्ति न रह जाय, इस कारण से उसे उपमा देकर प्रस्तुत किया गया है।

इस अध्याय का ऋषि नारायण है अर्थात् नरों का अयन, सम्वहन, धारण करने वाला। अध्याय का दृष्टिकोण भी नरो का अयन, सम्वहन, धारण करने वाला परमात्मा तथा सामाजिक विषय का है। वर्ण–व्यवस्था की रूपरेखा जिन मन्त्रों में दी गयी है, उनका देवता है "पुरुष"। पुरुष का अर्थ है पूर्ण तथा पुरुषार्थ-मय— परमात्मा पूर्ण है और समस्त पुरुषार्थों से युक्त है। समाज

भी अपने वर्गीकरण में पूर्ण और अपने लिये आवश्यक समस्त पुरुषार्थों से युक्त होता है। इस प्रकार उक्त दो मन्त्रों को समाज के सभी अंगों, समस्त नरों और (नर-समूह) परिवारों को अयन, सम्वहन, धारण करने की दृष्टि और समाज के वहन करने के विषयों (देवताओं) को दृष्टिगत रखकर ही समझा जाना चाहिये। जो लोग मन्त्र के ऋषि और देवता का विचार किये बिना वेद-मन्त्रों के अर्थ करते हैं, वह उनसे भले ही कुछ अच्छे विचारों को ले लें किन्तु मन्त्र का वास्तविक उद्देश्य— जो उसके ऋषि और देवता को समझकर प्रकट हो सकता है—अन्य प्रकार सम्भव नहीं। मन्त्र इस प्रकार है—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ।।
यजु० ३१।१०।

अर्थ -- (यत्) जो (पुरुषम्) पुरुष का अर्थात् पूर्ण को और पुरुषार्थ-युक्त को (वि-अदधुः) विविध प्रकार (कतिधा) कितने प्रकार (वि-अकल्पयन्) विशेष कर कहते हैं। (मुखम्) मुंह (किम् अस्य आसीत्) क्या इसका था किम् बाहू) क्या भुजा (किम् ऊरू) क्या नाभि से जङ्घाओं तक का भाग और क्या (पादा उच्येते) पैर कहे जाते हैं ?

अभिप्राय यह है कि यदि मानव-समाज का उसकी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसके अपने भीतर के सामर्थ्य के अनुसार— जो उसकी अपनी आवश्यकताओं के लिये उसमें पूर्ण है — वर्गीकरण किया जाय तो जिस प्रकार शरीर में मुख, हाथ, जङ्घायें और पैर अपने-अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति करके इसे पुरुष अर्थात् पुरुषार्थयुक्त कहलाने का अधिकारी बनाये रखते हैं, इसी

प्रकार इस समाज में वह कौन तत्व अर्थात् कौन-कौन वर्ग होंगे ? इस का उत्तर इससे आगे के मन्त्र में इस प्रकार दिया गया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
यजु० ३१।११।

अर्थ— (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अस्य) इसका (मुखम् आसीत्) मुंह (बनाया) था। (बाहू) भुजायें (राजन्यः) राजपुत्र, क्षत्रिय (कृतः) की गयीं बनायी गयीं। (ऊरू) नाभि से जंघा पर्यन्त भाग (तत्) वह (अस्य) इसका [यत्] जो [वैश्यः] वैश्य [है]। (पद्भ्याम्) पैरों (के स्थान] के लिये [शूद्रः] शूद्र [अजायत] जन्मा है।

अर्थात् जिस प्रकार शरीर की शक्तियाँ शरीर के ही विविध अंगों मुख आदि के रूप में अपने-अपने कर्त्तव्यों को पूरा करके मानव-जीवन का पूर्ण अयन, सम्वहन धारण कर लेती हैं। ठीक इसी प्रकार समाज में भी पूरी शक्तियाँ विद्यमान है, जो सम्पूर्ण समाज का वहन ठीक प्रकार कर सकती है, यदि उनका वर्गीकरण ठीक प्रकार से हो। जैसे शरीर में मुख-ज्ञानादि कार्य करने वाला है, इसी प्रकार समाज में भी विद्या-विज्ञान के कार्यों को सम्पादन करने वाले लोग अर्थात् ब्राह्मण पैदा कर दिये गये हैं। जिस प्रकार शरीर की रक्षा के लिये शरीर में भुजायें उत्पन्न की गयी हैं, उसी प्रकार समाज की रक्षा-व्यवस्था के लिये समाज में

पराक्रमी लोग क्षत्रिय उत्पन्न कर दिये गये हैं। जैसे खाये हुये भोजन को सँभाल, पचा और रस बना कर पेट सम्पूर्ण शरीर को बाँट देता है और जंघायें शरीर की गति में योग देती हैं, इसी प्रकार अर्थ सम्पादन कर समस्त समाज में दान व करों के द्वारा बाँट देने वाली और देश-विदेश जाकर व्यापार द्वारा राष्ट्र की समृद्धि में लगा रहने वाला वर्ग अर्थात् वैश्य-वर्ग उत्पन्न किया गया है। इन तीनों वर्गों के कार्यों में सेवा व परिश्रम द्वारा योग-दान करने वाला शूद्र भी उत्पन्न हुआ है, जैसे पैर सम्पूर्ण शरीर का भार वहन कर उसे सब स्थानों पर लिये फिरते हैं।

सत्यासत्य के निश्चय के लिये यदि निष्पक्षता से पूर्वाग्रह रहित होकर विचार किया जाय तो मुख, हस्त, ऊरू, पाद आदि उदाहरण ही यह सिद्ध करने को पर्याप्त हैं कि प्रधानता गुण कर्मों की है, जन्म की नहीं। यदि वास्तविक रूप में यह व्यवस्था वर्त्तमान काल में भी लागू हो जाय तो कोई राष्ट्रीय और सामाजिक समस्या ऐसी नहीं है जो बिना किसी उलझन के स्वाभाविक रूप से हल होती न चली जाय।

वर्ण-व्यवस्था और महाभारत, पुराण व धर्म-सूत्र

अभागे भारत में जन्म जातीयता ने अपनी जड़ें इतनी गहरी जमा ली हैं कि इससे उत्पन्न भेद भाव छुआ छूत के कारण एक सहस्र वर्ष पराधीनता में विदेशियों द्वारा पादाक्रान्त रहकर भी भारतवासी नेत्र खोलने को तैयार नहीं। निकृष्ट से निकृष्ट कर्म करके भी कुछ लोग तो अपनी उच्चता का ढोल पीटने में गौरव की न केवल अनुभूति ही अपितु अभिव्यक्ति भी करते हैं। इन लोगों को इतना तक भी पता नहीं कि इनके अपने धर्म-शास्त्र इस विषय में क्या कहते हैं ?

इस लेख में हम कतिपय धर्म-शास्त्रों की सम्मत्ति उद्धृत कर रहे हैं। पाठकगण देखेगें कि शास्त्रों के नीचे दिये वचनों से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि वर्ण का सम्बन्ध जन्म से नहीं अपितु गुण-कर्म से है। साथ ही यह भी कि गुण कर्मों के परिवर्तित हो जाने से वर्ण भी परिवर्तित हो जाते हैं। इस विषय में पहले भारत के महान् इतिहास ग्रन्थ महाभारत से उद्धरण प्रस्तुत है पाठकगण ध्यानपूर्वक पढ़ें।

इन्द्रो ब्रह्मणः पुत्रः क्षत्रियः कर्मस्य कारणम्।

महाभारत शान्ति पर्व ४३।११।

अर्थ—इन्द्र ब्राह्मण का पुत्र था, कर्म द्वारा क्षत्रिय हो गया।

अब पुराणों के प्रमाण देखिये—

श्वपाकी गर्भसम्भूत: पिता व्यासस्य पार्थिव: ।
तपसा ब्राह्मणो जात: संस्कारस्तेन कारणम् ।।

भविष्य पुराण ब्रह्मपर्व ४३।२७

अर्थ—चाण्डाली के गर्भ से उत्पन्न व्यास जी के पिता क्षत्रिय थे। तप के द्वारा ब्राह्मण हो गये इसका कारण संस्कार हैं। इस श्लोक से स्पष्ट है कि चाण्डाली माता और क्षत्रिय पिता के संयोग से जन्म लेकर भी पुरुषार्थ पूर्वक विद्याध्ययन करके अपने संस्कारों को परिवर्तित कर व्यास जी ब्राह्मण बने तथा महर्षि वेद-व्यास कहलाये ।

गणिका गर्भसम्भूतो वशिष्ठश्च महामुनि: ।
तपसा ब्राह्मणो जात: संस्कारस्तेन कारणम् ।।

भविष्य पुराण ब्राह्मपर्व ४३।२८

अर्थ—गणिका अर्थात् वेश्या के गर्भ से उत्पन्न महामुनि वशिष्ठ तपस्या अर्थात् पुरुषार्थ पूर्वक विद्याध्ययन करके ब्राह्मण बने इसका कारण यह है कि उन्होंने विद्या तथा आचरण द्वारा उत्तम संस्कार निर्माण किये और इस प्रकार से उत्तम आचार-विचार अर्थात् गुण-कर्म-स्वभाव भी ब्राह्मणत्व का उपलब्ध हुआ जिसके कारण समाज में ब्राह्मण पद प्राप्त हुआ ।

इससे यह तो स्पष्ट है कि जिसके संस्कार, आचार-विचार गुण, कर्म, स्वभाव उत्तम हों, वही ब्राह्मण होता है फिर चाहे वह किसी शूद्र घर में जन्मा हो अथवा अतिशूद्र घर में । बिना उत्तम संस्कारों की प्राप्ति के कोई ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता, चाहे वह ब्राह्मण परिवार में ही जन्मा हो। उत्तम संस्कारों की प्राप्ति के लिये विद्या-प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है ब्रह्म पुराण ५३/२२३ में कहा भी है—

शूद्रोऽपि आगमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ।

अर्थ — शूद्र भी शास्त्र सम्पन्न अर्थात् शास्त्रों का ज्ञाता और संस्कारित होकर द्विज हो जाता है ।

आपस्तम्ब धर्म सूत्र का विधान भी पठनीय और माननीय है, जो नीचे उद्धृत है ।

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।१।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।२।
(आपस्तम्ब सूत्र)

अर्थ— धर्म के आचरण से निकृष्ट वर्ण के लोग भी स्व-स्व कर्मानुसार पूर्व अर्थात् अपने से उच्च वर्ण को प्राप्त होते हैं और इस प्रकार उनका जाति परिवर्त्तन हो जाता है । इस का अभिप्राय यह है कि शूद्र जिस वर्ण के गुण-कर्म स्वभाव को पुरुषार्थ पूर्वक विद्या-विज्ञान प्राप्त करके धारण कर लेगा, उसी वर्ण का अर्थात् वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण हो जायगा । इसी प्रकार वैश्य भी परिश्रम करके क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण और क्षत्रिय पुरुषार्थ द्वारा ब्राह्मण बन सकता है, जिस प्रकार विश्वामित्र और वेदव्यास क्षत्रिय से ब्राह्मण बने थे ।

इसी प्रकार अधर्म का आचरण करने के कारण अर्थात् स्व-वर्ण के आचरण से निम्न स्तर के आचरण करके उच्च वर्ण का व्यक्ति भी अपने से जघन्य अर्थात् निम्न वर्ण को प्राप्त होता है । इसका स्पष्टार्थ यह हुआ कि जब ब्राह्मण ब्राह्मणत्व के कर्म न करके ब्राह्मण के गुण-कर्म स्वभाव के विपरीत कर्म करने लगता है तो उन कर्मों के द्वारा जिस वर्ण के अनुसार वह कर्म होते हैं, उसी वर्ण को प्राप्त हो जाता है ।

अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण से क्षत्रिय, वश्य तथा और अधिक पतित शूद्र बन जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय भी वैश्य और शूद्रपन को तथा वैश्य शूद्रपन को प्राप्त हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी का यह कथन भी उक्त शास्त्रीय प्रमाणों की पुष्टि करता है—

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस कीन्ह सो तस फल चाखा॥

अर्थ—विश्व में कर्म की प्रधानता स्वीकार की जाती है। जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। जैसे आचरण अर्थात् कर्म होंगे, वैसा ही पद (स्थान) समाज में मिलेगा। इन प्रमाणों के होते हुए भी जो लोग जन्म जातिवाद के समर्थक हैं, शास्त्र का निम्न वचन भी उन्हें ध्यान में रखना चाहिये।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।

अर्थ—जन्म से सब शूद्र अर्थात् अशुद्ध, गन्दगी में लिपटे हुए तथा मूर्ख ही उत्पन्न होते हैं। शुद्ध किये जाने पर विद्या की प्राप्ति और शुभ संस्कारों के द्वारा ही स्व-स्व गुण-कर्म-स्वभाव के अनु-सार द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र हो जाते हैं।

द्विज का अर्थ है द्विजन्मा—जिसके दो जन्म हुए हों। एक माता-पिता के संयोग से तथा दूसरा विद्या प्राप्ति द्वारा गुरु जनों से। किसी भी प्रकार की विद्या प्राप्त न कर पाने वाला अर्थात् माता-पिता से जन्म प्राप्त करने मात्र से तो मनुष्य शूद्र ही रह जाता है। सृष्टि-उत्पत्ति-काल में मानव समाज की स्थिति और

उसके वर्णों में परिवर्तन हो जाने अर्थात् वर्ण विभाजन का वर्णन करते हुए ब्रह्मर्षि भगवान् भृगु के शब्दों को जो उन्होंने बृहस्पति के पुत्र भारद्वाज से कहे हैं– हम यहाँ उद्धृत करते हैं। श्लोक इस प्रकार है—

न विषेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत।
ब्रह्मण: पूर्वं सृष्टा हि कर्मभि: वर्णतां गता:।।
पिशाचा: राक्षमा: प्रेता: विविधा म्लेच्छजात:।
नष्ट ज्ञान–विज्ञाना: स्वच्छन्दाचार चेष्टिता:।।

महाभारत शान्तिपर्व १८६। । ८

अर्थ—वर्णों की कोई विशेषता नहीं, सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है। पहले सब ब्राह्मण थे, कर्मों द्वारा वर्णों को प्राप्त पिशाच राक्षस, प्रेत आदि विविध जातियाँ हो गयीं।

प्रिय पाठक वृन्द ! आपने ध्यान पूवक इस सम्पूर्ण पुस्तिका को पढ़ा ही है। यह आपको स्पष्ट हो गया होगा कि जो लोग जन्म जातीयता के आधार पर स्वयं को उच्च और अन्यों को नीच मानते उनसे घृणा और छआछूत करते हैं, वह इन सभी ग्रन्थों को अपने धर्म-ग्रन्थ और शास्त्र मानते हैं, जिनके प्रमाण हमने इस पुस्तिका में दिये हैं। ऐसी स्थिति में उन बन्धुओं की ऊँच-नीच की भावना और मान्यता तथा अपने ही धर्म बन्धुओं से घृणा अनुचित है। हमारा आप से विनम्र निवेदन है कि इस प्रकार के विचारों और व्यवहार को त्याग कर अपने धर्म बन्धुओं के साथ समानता और प्रेम का व्यवहार करें और अन्य सवण बन्धुओं को भी यह पुस्तक पढ़ा तथा समझाकर अपनों को अपनाने का पुण्य कार्य करें।

वैदिक संस्थान नजीबाबाद के सदस्य बनकर धर्म-प्रचार के महत्वपूर्ण कार्य में सहयोग कीजिये

१-प्रधान संरक्षक :-

कम से कम एक सहस्र रुपये प्रदान करने वाले संस्थान के प्रधान संरक्षक होते हैं।

२· संरक्षक :

कम से कम पाँच सौ रुपये प्रदान करने वाले संस्थान के संरक्षक होते हैं।

३-विशेष दानी :-

कम से कम एक सहस्र रुपये प्रदान करने वाले का लगभग दो पृष्ठ का परिचय तथा चित्र अथवा जिसकी स्मृति में वह दान दें उसका परिचय तथा चित्र एक पुस्तिका पर प्रकाशित किया जाता है।

(ख) कम से कम तीन सौ रुपये देने वाले दानी का नाम पुस्तक पर प्रकाशित किया जाता है। दानदाता यदि अपने किसी सम्बन्धी की स्मृति में वह राशि देते हैं तो उस सम्बन्धी की स्मृति पुस्तक में प्रकाशित की जाती है।

४-संस्थान का 'पुण्य-लोक' मासिक प्रधान संरक्षक, संरक्षकों तथा कम से कम एक सौ रुपये प्रतिवर्ष दान देने वालों को निरन्तर भेजा जाता है।

* संस्थान प्रकाशन *

(श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक कृत)

१. हिन्दु नहीं आर्य दो रुपये

२. मुसलमान बन्धुओ ! विचार करो,
अयोध्या में रामजन्म मन्दिर या मस्जिद ,,

३. अमृतमय छाया ,,

४. महामृत्युञ्जय मन्त्र ,,

५. सृष्टि-विज्ञान और वेद चार रुपये

६. महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव ,,

७. वर्ण जन्म से नहीं अपितु गुण कर्म से ,,

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत

८. ईसाइयत का परिचय ,,

डॉ० सत्यकेतु विद्यालङ्कार कृत

१. सत्यार्थप्रकाश सर्वांगपूर्ण धर्मशास्त्र दो रुपये

विविध

१०. हवन-यज्ञ और विज्ञान पाँच रुपये

११. भारत विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय मुस्लिम षड्यन्त्र चार रुपये

१२. आर्यों का आदि देश दो रुपये

१३. देशभक्तो ! सावधान ,,

१४. भड़कती साम्प्रदायिकता, दोषी कौन ? ,,